ओ३म्

मूर्त्तिप्रकाशसमीक्षा

अर्थात्

राणी के रायपुर निवासी पं० रामलाल जी के

मूर्त्तिप्रकाश पुस्तक का उत्तर

जो

सामवेद भाष्यकार और वेदप्रकाश के संपादक

तुलसीरामस्वामी ने

अपने

स्वामियन्त्रालय-मेरठ में

बनाकर छापी और प्रकाशित की

संवत् १९५७ पौष

मूल्य =)

गुरु विरजानन्द दण्डी सन्दर्भ पुस्तकालय
प परिग्रहण क्रमांक 796
दयानन्द महिला महाविद्यालय
ARYA SA... No. 17... HISSAR
३५८२ व-पु ५८

निवेदन

...तंप्रकाश नामक पुस्तक पं० रामलाल जी ने संवत् १९...
...र्ष हो चुके, बनाकर मुम्बई में छपाया था। जैसा कि इस पु...
...टाइटिल पेज पर लिखा है, परन्तु उस की कोई प्रति हमको न...
...। अब संवत् १९५६ में श्रीयुत लाला हरद्वारीमल सेठ भिवानी नि...
...वर्त्तमान देहली ने) अहमदी छापे खाने में हसनखां के प्रब...
...प लपे थे। ...१९५२ के छापे) मुद्रित पुस्तक की १ प्रति हमारे...
...त्तर देने को भेजी थी, जिस में पृष्ठ ३२ तक तो क्रमपूर्वक प्र...
...ा, जितने में छः प्रकरण पूर्ण थे। उन का उत्तर भी पूर्ण दिया...
...रन्तु इस से आगे कुछ रङ्ग साज़ी के विज्ञापनों के पृष्ठ बीच २...
...शालों की असावधानी से छपे मिले, जिस से ७। ८। ९ प्रकरण ख...
...रन्तु उन में आधुनिक स्मृतियों और पुराणादि के ही प्रमा...
...ा उत्तर देना न देना एक प्रकार से समान ही है। इस लि...
...दादि प्रामाणिक पुस्तकों के प्रमाणों पर यथोचित सब आवश्यक बा...
उत्तर लिखा गया है। आशा है कि सेठ हरद्वारी मल और अन्य इस...
...ढ़ने वाले इस से सन्तुष्ट होंगे॥

...शोक है कि जब ...मने संवत् ५६ में इस का उत्तर देना आरम्भ...
..., तब पं० रामलाल जी ग्रन्थकर्त्ता विद्यमान थे, परन्तु बीच में हम...
...में लग गये और प्रशंसित पण्डित जी इस बीच में परलोकव...
...स से पं० जी को दिखाने का हमारा मनोरथ अपूर्ण रहा।

तुलसीराम स्...

समाज पुस्तकालय
पुस्तक नं. 12/47
हिसार

ओ३म्

यद्यपि मूर्त्तिप्रकाशनामकेऽस्मिन्निबन्धे नव सन्ति कान्यपि तानि नूतनप्रमाणानि यान्यस्माभिरस्मदीयैरार्यपण्डितैर्वाऽदत्तपूर्वोत्तराणि, किञ्च " ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागस्य " द्वितीयेंऽशे प्रायो वेदसंज्ञाविवादास्पदीभूतानामनेकसम्मतिप्रमाणानां विवेचनं कुर्वद्भिर्ब्रह्मकुशलोदासीनप्रभृतिप्रतिवादिवादवावदूकप्रौढवादान् प्रतिवदद्भिस्थचाऽपहतज्वालानां पं० ज्वालाप्रसादानां विख्यातस्य दयानन्दतिमिरभास्करस्याऽभास्करस्योत्तरं प्रयच्छद्भिरेवास्माभिर्दत्तोत्तरप्रायाणि, सम्प्रति अनावश्यकानीव प्रत्याख्यानाऽनर्हाणि प्रतिभान्ति । तथापि निजशिष्यस्य श्रीमतो हरद्वारिमल्लस्य श्रेष्ठिनो महदाग्रहात् स्वप्रान्तेऽस्य मूर्त्तिप्रकाशस्याऽर्थतः मूर्त्यप्रकाशस्य नितरां साधारणाञ्जनान्प्रकाशविरहान्कुर्वाणस्य सुप्रचारबाहुल्येन तत्प्रान्तवासिजनस्वान्तजनितमोहव्यापादनाय, अथच अपौरुषेयवेदवेद्यस्य सनातनस्य धर्मस्य पुनरुज्जिजीविषया कृतातिश्रमाणां, निजसुखहानपूर्वकं परसुखैकप्रदानपराणां, यतिवराणां, निजविद्याद्वादशात्मरश्मिभिरतिघोरतमिस्रनिशानिशीथशयितजनतानिवारितान्धकाराणां, परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य्याणां श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनां श्रमवैफल्याय मोहात्प्रयतमानं श्री पं० रामलाल शर्म्माणमन्यांश्च तदनुगन्तॄन्बोधयितुं शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावैकब्रह्मोपासनानुष्ठानप्रचारेणाऽथाऽसंभाविताऽश्मार्चाप्रचारवारणेन जगदेकभागमैहिकामुष्मिकसुखभोगभाजनं चिकीर्षुभिरुत्तरमाविष्क्रियते ।

परं प्रायो दत्तोत्तरकल्पस्याऽस्य संस्कृतावल्या लोकभाषावि-

वृतिपूर्वकं स्वीयसंस्कृतवाग्विन्यस्तवाक्यजातस्य च साधारणजनबुबोधयिषया लोकभाषाविवृतिकरणे महान्तं प्रयासं ग्रन्थबाहुल्यं च पश्यद्भिरस्माभिरिदमेवोचितमिति मन्यते, यत्प्रतिपृष्ठं तदाशयबुभुत्सया लोकभाषयैवानूद्य तत्तत्प्रकरणगतवाक्यजातोत्तराणि क्रमशो विन्यस्तव्यानीति ॥

शार्दूल—विक्रीडितं छन्दः ॥

यस्मिन्विश्वमिदं चराऽचरमहो वर्वर्त्ति लीलासमम् ।
यस्मिन् सूर्यविधूदयौ च भवतो नित्यं तदाज्ञापरौ ॥
यस्मिन् मण्डलमण्डितं नभ इदं विभ्राजमानं सदा ।
तं नत्वा प्रतिमार्चनस्य विवृतिं सम्यक् समीक्षामहे ॥१॥

उपजातिश्छन्दः ॥

अनन्तविद्यस्य परेश्वरस्य सानन्दरूपस्य जगद्विधातुः ।
नित्यस्य शुद्धस्य गुहाशयस्य निराकृतेर्मूर्तिरहो विडम्बना ॥२॥

शार्दूल—विक्रीडितं छन्दः ॥

राज्ञीरायपुरे वसन् द्विजवरः श्रीरामलालः सुधीः ।
आत्मानं खलु वेदवादनिपुणं संमन्यमानो हृदि ॥
मूर्त्तेरर्चनमेव वेदविहितं चेत्यब्रवीदाग्रहात् ।
अज्ञानस्य निराकृतिः श्रुतिपरा तस्येयमाविष्कृता ॥३॥

अनुष्टुप्छन्दः ॥

रामान्तश्च तुलस्यादिः सामवेदस्य भाष्यकृत् ।
स्वाम्युपाधिर्विधत्ते वै मूर्त्तिपूजानिराकृतिम् ॥४॥

अर्थ—जिस परमेश्वर में यह चराऽचर जगत् लीला के समान वर्त्तमान है । अहो ! जिस में सूर्य और चन्द्रमा के उदय नित्य उस की आज्ञानुसार होते हैं । जिस में मण्डलों से भूषित यह आकाश सदा विराजता है । उसी

परमात्मा को नमस्कार कर के प्रतिमा पूजा की विकृति की भले प्रकार समीक्षा करते हैं ॥१॥ अनन्त विद्या वाले, परमैश्वर्यशाली, आनन्दस्वरूप, जगद्विधाता, नित्य, शुद्ध, बुद्धि में स्थित, निराकार परमेश्वर की मूर्त्ति मानना अज्ञान है ॥ २ ॥ राणी के रायपुर निवासी द्विजवर पं० रामलाल जी ने अपने जी में अपने को वेदशास्त्र में निपुण मानने वाले ने मूर्त्तिपूजा वेदों में विहित ही है, यह आग्रहपूर्वक कहा है । इस लिये उस अज्ञान का वेदानुसार खण्डन यह प्रकट किया जाता है ॥ ३ ॥ सामवेद के भाष्यकर्त्ता तुलसीराम स्वामी ने यह मूर्त्तिप्रकाश का खण्डन रचा है ॥४॥

इस में सन्देह नहीं कि पण्डित रामलाल जी का संस्कृत में अच्छा अभ्यास है । परन्तु यह भी आवश्यक नहीं कि संस्कृत का विद्वान् जो कुछ मुख से निकाल दे वही प्रमाण हो जावे । आज कल तो बहुत से ईसाई लोग संस्कृत में अच्छा अभ्यास रखते हैं, परन्तु क्या इतने ही से उन का कथनमात्र धर्माऽधर्म विचार में माननीय हो सकता है? कदापि नहीं । किन्तु—

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १ ॥ मनुः

जो लोग अर्थ और काम में डूबे हुवे नहीं हैं, उन को धर्मज्ञान का विधान है । और धर्म जानने की इच्छा वालों का सब से अधिक प्रमाण वेद है ॥

इस लिये उन के अन्य ग्रन्थों के प्रमाणों की उपेक्षा कर के वेदमन्त्रों के प्रमाणों पर विचार करना ही मुख्य कर्त्तव्य है । क्योंकि अन्य ग्रन्थ का प्रमाण वेद के विरुद्ध हो तो वह प्रमाणकोटि में नहीं रहता ॥ और पं० रामलाल जी जो पृष्ठ ४ में लिखते हैं कि—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाःस्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

अर्थात्—पुराण १ न्याय २ मीमांसा ३ धर्मशास्त्र ४ अङ्ग छः ५–१० वेद चार ११–१४ ये १४ विद्या और धर्म के स्थान हैं ॥ परन्तु इस १४ विद्या के समुदाय में वेद अपौरुषेय होने से मुख्य और अन्य ग्रन्थ गौण हैं । क्योंकि—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥

अर्थात् जो कोई वेद से विपरीत स्मृति और कुदृष्टि हैं वे सब निष्फल और मरणानन्तर नरकप्रद भी हैं ॥ और जो अत्रिस्मृति के वचन से पं० रामलाल जी कहते हैं कि–

वेदं गृहीत्वा यः कश्चित् शास्त्रं चैवावमन्यते ।
स सद्यः पशुतां याति संभवानेकविंशति ॥

अर्थात् जो केवल वेद का ग्रहण कर के अन्य शास्त्र का अपमान करता है वह २१ जन्म तक पशुभाव को प्राप्त होता है ॥

यदि इस का तात्पर्य्य वेदानुकूल शास्त्रों को लक्ष्य कर के है तब तो ठीक भी है, परन्तु वेदविरुद्ध का भी अपमान २१ जन्म तक पशुता का कारण हो तो ऊपर जो (या वेदबाह्याः०) श्लोक लिखा है उस के बनाने वाले मनु जी को भी आप २१ जन्म तक पशुता की गाली देते हैं । वेदातिरिक्त स्मृत्यादि का प्रमाण हम भी मानते हैं परन्तु वेदानुकूल होने तक ॥ और जो विष्णुस्मृति के प्रमाण से यह लिखा है कि–

श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी दैवनिर्मिते ।
काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः ॥१२४॥

अर्थात् ब्राह्मणों की दो दैवी आखें हैं १ श्रुति २ स्मृति । उन में से एक न हो तो काणा, और दोनों से हीन अन्धा है ॥

हम कह सक्ते हैं कि वेदानुकूल स्मृतियों से तात्पर्य है । विरुद्ध से नहीं । और यह वचन भी विष्णुस्मृति का है जो अपने विषय में आप ही प्रमाण नहीं हो सक्ता कि हम स्मृतियों से हीन काणा है । यदि ऐसा है तो सृष्टि के आरम्भ से स्मृतियों के बनने पर्य्यन्त केवल वेद को पढ़ने वाले ऋषिगण एक चक्षुष्क ही थे ?॥ पृष्ठ० ६ । ७ में जो बहुत से प्रमाण इस विषय पर लिखे हैं, उन का तात्पर्य्य यह है कि वेद के अतिरिक्त (अलावा) स्मृति आदि भी धर्मनिर्णय में प्रमाण हैं । सो हम भी धर्मविषय में उन्हें प्रामाणिक मानते हैं परन्तु जैसा कि जैमिनि जी मीमांसा में लिखते हैं कि–

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम् ॥ मी० १ । ३ । ३

वेदविरुद्ध त्याज्य है और विरोध न हो तो अनुकूल होने का अनुमान करना चाहिये । इसलिये जो बातें स्मृतियों की वेदों के साक्षात् विरुद्ध हैं,

वे अप्रमाण, और जो विरुद्ध न हों और वेद में स्पष्ट भी न दीखती हों वे प्रमाण हैं। इसी प्रकार श्रौत स्मार्त्त दो प्रकार के कर्मों की भिन्न २ व्यवस्था लग जावेगी। इतिहासादि भी जो सत्य हों और वेदों के विरुद्ध न हों, वे प्रमाण हैं ॥ पृष्ठ ७ में जो—

एतस्य महतोभूतस्य निःश्वसितमेतद्यद्ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोकः० । इत्यादि

बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है। इस में वेदातिरिक्त पुराण इतिहासादि को प्रमाण मानना स्पष्ट है। सो हम पूर्व ही लिख आये हैं कि हम भी वेदानुकूल इतिहासादि को प्रमाण मानते हैं और विरुद्ध को मनु और जैमिनि जी की सम्मत्यनुसार प्रमाण नहीं करते ॥

इति मूर्त्तिप्रकाशसमीक्षायां धर्मनिर्णायकशास्त्रनिरूपणे वेदातिरिक्त-पुराणादीनां वेदाधीनप्रमाणत्वनिरूपणं नाम प्रथमं प्रकरणम् ॥ १ ॥

———*:*———

अब दूसरे प्रकरण में वेद शब्द से मन्त्र ब्राह्मणादि अनेक ग्रन्थों का ग्रहण करने के लिये यह व्युत्पत्ति की है कि—

विदन्ति धर्माऽधर्मं अग्निहोत्रादीनि कर्माणि वा येनेति वेदः

अर्थात् जिस से धर्माधर्म वा अग्नि होत्रादि कर्मों का ज्ञान हो वह वेद है। परन्तु—

संज्ञायाम् ३।३।१०९ करणाधिकरणयोश्च ३।३।११७ इति सूत्राभ्यां ग्रन्थविशेषसंज्ञावाचको वेदशब्दः, न तु यौगिकार्थपरः साधारणो ज्ञानकारकग्रन्थमात्रपरः। इतरथा हि आधुनिकनाना-ग्रन्थानामपि धर्माधर्मज्ञानकारकत्वेऽग्निहोत्रादिविधायकत्वे च वेदत्वं स्यात् ॥

अर्थात् ऊपर कहे दोनों सूत्रों से विद धातु के आगे घञ् प्रत्यय लगा कर ग्रन्थ विशेष की संज्ञावाचक वेद शब्द है न कि जिस किसी नवीन ग्रन्थ से धर्माधर्म वा अग्निहोत्रादि का ज्ञान हो वही साक्षात् वेद है। यदि ऐसा

हो तो अब भी अनेक विद्वान् लोग धर्माधर्म निर्णयार्थ वा अग्निहोत्रादि विधानज्ञानार्थ अनेक ग्रन्थ बनाते हैं वे सब भी वेद कहे जाने चाहियें ॥

पृष्ठ ८ में जो—

अनन्ता वै वेदाः

लिखा है। उस का तात्पर्य वेदार्थ के अनन्त होने का है, न कि वेद ग्रन्थ के अनन्त होने का। यदि आप ग्रन्थ को अनन्त माने तो मन्त्र ब्राह्मण पुराण इतिहासादि से क्या? किन्तु कुरान बैबिल आदि अन्य मतवाद ग्रन्थों तथा समस्त राज्यों के समस्त दफ्तरों और समस्त पृथिवी के समस्त पुस्तकों को भी वेद मान लो तब भी अनन्त नहीं होंगे क्योंकि पृथिवी ही सान्त है फिर तदाधार ग्रन्थ अनन्त कैसे हो सकते हैं ॥ फिर आप ही चरणव्यूहानुसार वेद की अवधि एक लक्ष बतलाते हैं तो भला जब कि एक लक्ष ही वेद है तो अनन्त कहां रहा? इस लिये आप के लेख में स्वयं भी परस्परविरोध है ॥

पं० रामलाल जी के पृष्ठ ८ के लेख का तात्पर्य—विद्यारण्यादि वेदभाष्यकारों ने मन्त्र ब्राह्मण दोनों को वेद माना है और संहितामात्र को वेद मानने का खण्डन किया है। तथा विवरण (व्याख्या) में भी शक्तिग्रह होने से प्रमाण होती है। इस लिये उपनिषद् में भी वेद शब्द का शक्तिग्रह है। इस से उपनिषद् वेद हैं। और तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि—

एषा वेदोपनिषद्

इस से उपनिषद् का वेद के अन्तर्गत होना पाया जाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में उपनिषदों को संहिताओं की अपेक्षा महासंहिता माना है ॥

उत्तर—विद्यारण्यादि जब तक कोई पुष्ट प्रमाण न दें, तब तक उन के कथन मात्र से ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हो सकते। क्योंकि आप के समान विद्यारण्यादि भी साध्य कोटि में हैं। सिद्ध में नहीं। शक्तिग्रह की रीति से मूल टीका रूप से मन्त्र मूल और ब्राह्मणादि टीका हैं, यह मानना हम को भी इष्ट है। परन्तु मूलविरुद्ध टीका कहीं हो तो टीकाकारों की भूल होगी यह मानना पड़ेगा। वेदोपनिषद् का अर्थ यह है कि वेद का रहस्य वा सार वा उत्तम ज्ञानकाण्ड है। कुछ यह तात्पर्य नहीं कि समस्त उपनिषद् और सन्

१८९७ की बनी मुम्बई की छपी कलिसंतारणोपनिषद् भी वेदान्तर्गत हो जावे। उपनिषदों में मुख्यतया ब्रह्मज्ञान होने से पांच अधिकरणों को महासंहिता नाम से पुकारना, यह नहीं सिद्ध करता कि वेद हैं। यों तो ज्योतिष वैद्यक के अनेक ग्रन्थों का नाम संहिता है। जैसे भृगुसंहिता इत्यादि। तो क्या जिस पुस्तक का नाम संहिता वा महासंहिता रख दें वह वेद होजावेगा? कदापि नहीं ॥

पृ० ९ में जो लेख है उस का तात्पर्य यह है कि मनुस्मृति के आरम्भ में भी वेद के विशेषण स्वयंभू अचिन्त्य और अप्रमेय हैं। सो चार संहिता मात्र ही वेद माने तो अचिन्त्य और अप्रमेय नहीं हो सकते ॥

उत्तर—अचिन्त्य और अप्रमेय का तात्पर्य यहां भी अर्थपरक है। शब्दपरक नहीं। यदि शब्दपरक मानोगे तो ब्राह्मणादि ग्रन्थों को वेद में मिलादेने पर भी समस्त शब्द चिन्त्य और प्रमेय ही रहेंगे, अचिन्त्य वा अनन्त न होसकेंगे ॥

पृ० १० में मनु अध्याय ११ श्लोक २४३ में आये "वेदान्" पद का अर्थ कुल्लूकभट्ट, मेधातिथि, गोविन्द राजादि ने मन्त्रब्राह्मणात्मक किया है। फिर वहीं श्लोक २६२ में आये "ऋक्संहिता" पद का अर्थ कुल्लूकभट्टादि ने यह किया है कि ऋक्संहिता मन्त्रब्राह्मणादिस्वरूपा जाननी, न कि मन्त्रमात्रस्वरूपा। और वहीं श्लोक २६१ में कुल्लूकभट्टादि ने "ऋग्वेद" का अर्थ मन्त्रब्राह्मणादि किया है "चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभ" इत्यादि इस में त्रिधाबद्धः पद का अर्थ यह है कि मन्त्र ब्राह्मण कल्प इन तीन से यज्ञ बन्धा है ॥

उत्तर—कल्लूकभट्टादि के किये अर्थ साध्य हैं सिद्ध नहीं, क्योंकि प्रमाणरहित हैं। और जब कुल्लूकभट्टादि ने "ऋक्संहिता" पद की व्याख्या में भी ब्राह्मणादि मिला दिये जहां साक्षात् संहिता पद भी पड़ा था, जिस से संहिता मात्र का ग्रहण स्पष्ट था तथापि कुल्लूकभट्टादि ने जब खींच तानकर ब्राह्मणादि घुसेड़ दिये फिर ऐसे पक्षपाती का प्रमाण क्या?

चत्वारि शृङ्गा० इत्यादि में यज्ञ को त्रिधाबद्ध मन्त्र ब्राह्मण कल्प से निरुक्तकार ने भी लिखा है क्योंकि यज्ञ में मन्त्र ब्राह्मण कल्प तीनों से काम पड़ता है। के वल वेद से ही नहीं परन्तु क्या इस से तीनों का वेद होना सिद्ध हो जायगा? यदि यही नियम हो कि जिस का यज्ञ में उपयोग हो वही वेद। तो यज्ञ में अनेक पद्धतियों का भी उपयोग होता है वह भी वेद माननी पड़ेगी।

त्रिधाबद्धः का महाभाष्यकार ने व्याकरणपरक अर्थ किया है तो फिर व्याकरण को भी क्या वेद मानियेगा ॥

पृष्ठ ११ में वेद के छः अङ्गों का वर्णन है कि चरणव्यूह में छन्द को पांव, कल्प को हाथ, ज्योतिष को आंख, निरुक्त को कान, शिक्षा को नासिका और व्याकरण को मुख लिखा है ये वेद के अङ्ग हैं। जिन में ज्योतिष सब अङ्गों में प्रधान है उस में सर्वत्र ही मूर्त्तिपूजा लिखी है। और पस्पशान्हिक महाभाष्य में भी षडङ्ग वेद पढ़ने जानने के लिये सब अङ्गों में व्याकरण प्रधान माना है, अङ्ग के विना वेद भी निकम्मा है यह प्रतिपादित ही है ॥

उत्तर—जिस प्रकार शरीरबन्धन वाले जीवात्मा को हस्तपादादि अङ्गों के विना साधारण लोग नहीं जान सके और न वह अपना काम कर सका है इसी प्रकार वेद को भी साधारण लोग अङ्गों के विना नहीं समझ सके। और न स्थूलयज्ञादि कार्य्यविषयक ज्ञान हो सका है। परन्तु जैसे वैज्ञानिक लोग जानते हैं कि जीवात्मा के वास्तविक स्वरूप में हाथ पांव आदि अङ्ग नहीं हैं। और न वह अपने पारमार्थिक मुक्तस्वरूप में इन की आवश्यकता रखता है। इसी प्रकार वेद के यथार्थस्वरूप में न व्याकरण आदि अङ्ग स्थूल हैं और न उस का सूक्ष्म कार्य्यबोधक ज्ञान इन के विना रुक सका है। सब कोई शास्त्र का थोड़ा भी अभ्यासी जानता है कि देह वा देह के अवयवों अङ्गों से आत्मा भिन्न है इसी प्रकार व्याकरणादि वेदाङ्गों से वेद भिन्न हैं।

आप को तो मूर्त्तिपूजा सिद्ध करनी थी फिर आप ने पहले दो प्रकरणों में से एक में धर्मशास्त्रादि के मानने पर बल लगाया, और दूसरे में वेद शब्द से अनन्त ग्रन्थों का ग्रहण करने में बल लगाया। इस से भी स्पष्ट विदित होता है कि आप अपने जी में यह जानते हैं कि धर्मशास्त्र के नाम से प्रचरित पुस्तकों के सहारे विना हम मूर्त्तिपूजा को सिद्ध नहीं कर सके, और मन्त्रसंहिता मात्र को वेद माना जावे तब भी हम अपने पक्ष की पुष्टि नहीं कर सके, तभी तो इन सब के लिये दौड़ते हैं। यदि जानते कि मन्त्र संहिता मात्र से भी मूर्त्तिपूजा की पुष्टि हो सकी है, तो मूर्त्तिप्रकाश ग्रन्थ में इन प्रकरणों की आवश्यकता ही क्या थी ? ॥

इति श्रीमूर्त्तिप्रकाशसमीक्षायां वेदसंज्ञाविचारे ब्राह्मणादिग्रन्थानां वेदत्वनिराकरणं नाम द्वितीयं प्रकरणम् ॥ २ ॥

तीसरे प्रकरण में वेदों की शाखाओं का विभाग वर्णन किया है। और निर्णय शब्द पुल्लिङ्ग को निर्णयम् यह नपुंसकत्वेन वर्णित किया है। पृष्ठ ११ का अन्त और १२ समस्त का यह आशय है कि वेद ४ हैं—ऋग् यजुः साम और अथर्व। उन में ऋग्वेद के ८ स्थान हैं—चर्चा आवक चर्चक अवणीय-पार क्रमपार क्रमचट क्रमजट और क्रमदण्ड। पांच प्रकार की शाखा हैं—आ-श्वलशाकल आश्वलायन शाङ्खायन और माण्डूकायन। उनका अध्ययन यह है ६४ अध्याय, दश मण्डल। एक ऋचा का १ वर्ग, ९ का १, २ ऋचावाले २ वर्ग इत्यादि प्रकार से सब २००६ वर्ग। १०५८० ऋचायें। यह १ पारायण हुवा ॥

यजुर्वेद के ८६ भेद हैं। उन में चर्कों के १२ भेद हैं—चर्क हूर्क कठ प्राच्य-कठ कपिष्ठलकठ वारायणीय वारतन्तवीय श्वेताश्वतर औपमन्यु पाताण्डि-नीय और मैत्रायणीय। उन में कठों के ४४ उपग्रन्थ हैं। मैत्रायणीयों के ६ भेद हैं—मानव वाराह दुन्दुभ लागलेय हार्द्रवीय और श्यामायनीय। इत्यादि तथा पृष्ठ १३ में—वाजसनेय (यजुः) संहिता में १०० कण्व २००० मन्त्र हैं। कुल यजु और २८ सहस्र ८०० चरण हैं। यह यजुर्वों का प्रमाण है। बालखिल्य और शुक्लिय सहित। इस का ब्राह्मण चौगुणा है। माध्यन्दिनी शाखा वाले १९७५ ऋचा यजुर्वेद की बालखिल्य और शुक्लिय सहित मानते हैं। शतपथ ब्राह्मण में १४ काण्ड हैं। मन्त्रपाठ, पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ। क्रम, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ, घन ८ विकृतियां हैं। पारस्कर गृह्य, कात्यायन श्रौत्र सूत्र हैं। इत्यादि ॥

उत्तर—हम ठीक जानते हैं कि मूर्त्तिप्रकाश में आप ने ग्रन्थों का बड़ा भारी सूचीपत्र किस प्रयोजन से दिया है। चरणव्यूह के कर्त्ता ने और आ-पने ऋग्वेद की संहिता के १० मण्डलों और यजुर्वेद के मन्त्रों की संख्या के अतिरिक्त यह लेशमात्र भी नहीं लिखा कि इस से भिन्न अमुक २ संहिता के इतने २ मन्त्र और सब संहिता मिल कर अमुक वेद के इतने मन्त्र हैं। यथार्थ में मूल वेद संहिता ये ही हैं जिन में से ऋग् यजुः की मन्त्रसंख्या थोड़े मतभेद से आपने लिखी है। अन्य शाखा व्याख्यानादि का संग्रह आप इस लिये करते हैं कि मूर्त्तिपूजा की सिद्धि चारों संहिता मात्र से न हो सके तो अन्य ग्रन्थ काम आवेंगे ॥

इसी प्रकार पृ०१३ से १५ तक फिर ग्रन्थों के सूचीपत्र दिये हैं कि–तैत्तिरीयकों के २ भेद हैं। १–खेय,२–खाण्डिकेय। उस में खाण्डिकेयोंके ५ भेद हैं। १ कालेता २ शाटयायनी ३ हिरण्यकेशी ४ भारद्वाजी ५ आपस्तम्बी। इनमें १८ सहस्र यजुष् हैं जिन को पढ़ कर शाखापार होता है। उन ही को द्विगुण पढ़ कर पदपार होता है। उन्ही को त्रिगुण पढ़ कर क्रमपार होता है। छः अङ्गों को पढ़ कर षडङ्ग जानने वाला होता है। कल्प मन्त्र ब्राह्मण यह त्रिगुण पाठ है। इस का पाठ मानो पूर्ण यजुर्वेद का पाठ है। शेष शाखान्तर हैं। शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द और ज्योतिष, ये छः अङ्ग हैं। छन्द वेदका पांव, कल्प हाथ,ज्योतिष आंख, निरुक्त कान, शिक्षा नाक और और व्याकरण मुख है। प्रतिपद अनुपद छन्दो भाषा धर्म मीमांसा न्याय तर्क, ये उपाङ्ग है। यूपलक्षण, छागलक्षण, प्रतिप्रस्थानुवाक इत्यादि १८ परिशिष्ट हैं। वाजसनेयों के १५ भेद हैं–जाबाल,बौधेय,काण्व,माध्यंदिन, शापेय,स्थापायनी,कपोल,पौण्ड्रवत्स,आवटिक,परमावटिक,पाराशर,वैणेय,वैधेय, वैनतेय और वैजव। उन के अध्ययन दो हैं–१ शौक्लिकर२ प्रवचनीय। पूर्ण अधर्यु वह है जो मन्त्र, ब्राह्मण, कल्प, अङ्ग, यजुष् और ऋचा इनको भागपूर्वक जानता हो ॥

उत्तर–इस संख्या के गिनाने का इस के अतिरिक्त कुछ प्रयोजन न था कि इन सब ग्रन्थों के प्रमाण भी मूर्त्तिपूजा की सिद्धि में काम आसकें। सो जहां २ आगे आप जिस २ का प्रमाण देकर मूर्त्ति सिद्ध करेंगे वहां २ उस २ पर विचार किया जायगा। पाठकों को स्मरण रहे कि ग्रन्थकर्त्ता के वा अन्य किसी के पास भी वर्त्तमान समय में ऊपर के सब पुस्तक उपस्थित नहीं हैं। केवल चरणव्यूहादि से नामों का सूचीपत्रादि मात्र मिलता है, जो उक्त पं० जी ने यहां लिख दिया है। केवल १०। ५ शाखाओं के अतिरिक्त सब नष्ट हो चुकी हैं। अस्तु, इस से विचारणीय और साध्यपक्ष मूर्त्तिपूजा को तो कोई बल इस लिये नहीं प्राप्त होता कि ये सब ग्रन्थ मिलते नहीं,परन्तु हम समझते थे कि चलो और कुछ नहीं तो यजुर्वेद की १०० शाखायें ही पं० जी गिनायेंगे। सो यह आशा भी पूर्ण न हुई। पूरे १०० नाम भी न गिनाय पाये ॥

आगे पृष्ठ १५ से लिखा है कि—सामवेद की १००० एक सहस्र शाखा थीं,उन में से कुछ अनध्यायों में पढ़ीं गईं इस से शतक्रतु इन्द्र के वज्र से

नष्ट हो गईं, उन की व्याख्या करेंगे—उन में राणायणीय शाखाओं के ७ भेद हैं—राणायणीयाः, शाट्यमुग्र्याः, कालेयाः, महाकालेयाः, लाङ्गलाः, शार्दूलाः और कौथुमाः । उन में से कौथुमों के ७ भेद हैं—आसुरायणाः, वार्त्तायणीयाः, प्राञ्जलिः, वैनभृतः, प्राचीनयोग्याः, नैगेयाः और कौथुमाः । उन का अध्ययन—८००० आग्नेय, ४०० पावमान, २६ ऐन्द्र, जिन को सामग लोग गाते हैं, इन को पढ़ कर प्रियतर और शेषों को पढ़ कर शिष्टविंशतिक होता है । इस पर किन्हीं का मत है कि—औच्चिष्टपूत साम है । उस की संज्ञा धातुलक्षण है। इन सामों का अध्ययन—८००० साम और १४ साम ८०० साम ९० साम १० साम ७ साम ये बालखिल्यों, सुपर्णों, आरण्यकों और सौर्यों सहित सामगण है ।।

उत्तर—इस लेख के प्रयोजन तो वे ही हैं जो ऊपर यजुर्वेद की शाखा गिनाने के थे । १००० शाखाओं की गिनती नामपूर्वक यहां भी ज्ञात न हो सकी । यदि ज्ञात हो जाती तो यही एक बड़ा भारी लाभ होता । अनध्यायों में पढ़ने से न जाने इन्द्र के वज्र मे तात्पर्य बिजुली है कि जिस के गिरने से यह शाखापुस्तक जल कर नष्ट हो गये, वा क्या । पं० जी के इस लेख से इस बात का कुछ पता चलता है कि महाभाष्य में जो २१ ऋग्वेद की १०१ यजुर्वेद की १००० सामवेद की और ९ अथर्ववेद की सब मिलाकर ११३१ शाखा लिखी हैं, जिन में से ४ को मूल मान कर शेष ११२७ शाखा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखी हैं, उस पर विचारणीय यह था कि मूल चार संहिता भी साम्प्रत माध्यन्दिन आदि शाखाओं के नाम से ही प्रसिद्ध हैं, तो ये तो सब ११३१ शाखा ही शाखा हुईं, मूल वेद कौन से हैं ? ऊपर के पं० जी के लेख में राणायणीयों के ७ भेद कह कर स्वयं राणायणीयों को भी उन सातों के अन्तर्गत गिना है और कौथुम के ७ भेद बताकर साक्षात् कौथुम को भी उन सातों में से एक भेद गिनाया है । जिस से ज्ञात होता है कि उस कालमें एक वस्तु जो कि मूल हो, उस की शाखाओं के साथ उस मूलको भी गिना दिया करते थे। कदाचित् इसी प्रकार ४ मूल संहिता भी ११३१ शाखाओं में शाखा नाम से प्रसिद्ध हुई हैं । लोक में भी किसी वृक्ष के शाखा विभागों की गणना में प्रायः एक जड़ (मूलस्तम्भ)को भी शाखासमुदाय का एक भाग मान लेतेहैं कि यह एक नीचे को जानेवाली और शेष चारों ओर और ऊपरको जाने वाली शाखाहैं। परन्तु

वास्तव में सब लोग जानते हैं कि "मूलस्तम्भ" (जड़) पहिली है और अन्य शाखा पश्चात् शनैः २ निकली हैं और उसी मूलस्तम्भ में से निकली हैं। इसी प्रकार वाष्कल माध्यंदिनादि नाम से शाखा कहाने वाली भी चार संहिताओं को अन्य शाखाओं का मूल मानना अयुक्त नहीं, जब कि उन चारों से पूर्व अन्य शाखाओं के होने में कोई प्रमाण नहीं मिलता है ।।

पृ० १५ के अन्त से पृ० १६ तक अथर्व की शाखादि का वर्णन है कि-अथर्व के नव भेद हैं-पिप्पलाः, शौनकाः, दामोदाः, तोत्तायनाः, जाबालाः, ब्रह्मपलाः, शाकुनाखी, देवदर्शी और चारणविद्याः । इन का अध्ययन १२००० है। इत्यादि। इन के ५ कल्प हैं। प्रतिकल्प में ५०० सैंकड़े हैं १ नक्षत्रकल्प २ विधानकल्प ३ वितानकल्प ४ संहिताविधिः अभिचारकल्प ५ शान्तिकल्प। और सभी वेदों के उपवेद हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद, अथर्ववेद का शिल्पिशास्त्र और अर्थशास्त्र। यह कात्यायन वा स्कन्द भगवान् का कथन है ।।

उत्तर-इस में अथर्व की शाखा और उपवेद चारों वेदों के गिनाये हैं किसी का उत्तर देना आवश्यक नहीं ।।

पृ० १६ पं० ११ से फिर वेदों के रूप, वर्ण, परिमाण, गोत्र, देवता, छन्दों का वर्णन इस प्रकार है कि-ऋग्वेद-कमलनेत्र सुविभक्तग्रीव कुञ्चितकेशश्मश्रु श्वेतवर्ण पांच बिलायंद लम्बा चौड़ा है। यजुर्वेद-पिङ्गाक्ष, बीच में पतला, मोटे गले और कपोल वाला, ताम्रवर्ण वा कृष्णवर्ण, छः प्रादेश भर लम्बा है। सामवेद-नित्य माला पहने हुए, प्रसन्न, शुद्ध, पवित्रस्थानवासी, शमी, दान्त, चर्म वाला, बड़े शरीर वाला, सुवर्णनेत्र, आदित्यवर्ण, ९ रत्नीमात्र लम्बा चौड़ा है। अथर्ववेद-तीक्ष्ण प्रचण्ड कामरूपी विश्वात्मा विश्वकर्ता क्षुद्रकर्मा स्वशाखाध्यायी प्राज्ञ महान् नीलोत्पलवर्ण, अपनी स्त्री में सन्तुष्ट, १० रत्नीमात्र लम्बा चौड़ा है। ऋग्वेद का आत्रेय गोत्र सोमदेवता गायत्री छन्द है। यजुर्वेद का काश्यप गोत्र इन्द्रदेवता त्रिष्टुप् छन्द है। सामवेद का भारद्वाज गोत्र इन्द्रदेवता जगती छन्द है। अथर्ववेद का वैखानसगोत्र ब्रह्मदेवता अनुष्टुप्छन्द है। जो कोई इन वेदों के नाम रूप गोत्र प्रमाण छन्द देवता वर्णादि का वर्णन करे वह सर्वविद्यासंपन्न हो, पूर्वजन्म के स्मरण वाला हो, जन्म जन्मान्तरों में वेदपाठी हो, अव्रती व्रती हो, अब्रह्मचारी

ब्रह्मचारी हो। जो गर्भवती इस चरणव्यूह को सुने पुत्र पाती है, जो इसे श्राद्ध में पढ़े वह पितरों को अक्षय श्राद्ध समर्पण करता है। जो इसे पढ़े वह पङ्क्तिपावन होता है। जो इसे प्रतिपर्व में पढ़ा करे उस के पाप दूर होते हैं। मुक्ति के योग्य होता है। इति धृति शिखा शक्ति ये ४ वेदों की ४ पत्नी हैं जो यज्ञकाल में ईशानादि कोणों में बैठी रहती हैं। १ लक्ष ४ वेद, १ लक्ष भारत, १ लक्ष व्याकरण और ४ लक्ष ज्योतिष है।

उत्तर—यदि वेद पुस्तकों का नाम है तो उन के रूप रंग आकार केश मूंछ गर्दन नेत्र लम्बाई चौड़ाई गला गाल माला इत्यादि कल्पना वर्त्तमान समय में मिलने वाले वेदपुस्तकों से प्रत्यक्ष विरुद्ध है और यदि ज्ञान का नाम वेद है तो उस में ये सब बातें असम्भव हैं। वेदों के गोत्र इस लिये अशुद्ध हैं कि उन २ ऋषियों की उत्पत्ति से पूर्व ही वर्त्तमान थे। देवता इस लिये अशुद्ध हैं कि जैसे ऋग्वेद में इन्द्रसूक्त अधिक हैं और इसी कारण इन्द्र को वेदों में "पुरुहूत" कहा जाता है, जिस का अर्थ "बहुत पुकारा हुवा" है। इसी प्रकार अन्य वेदों में अनुमान है। इसी लिये वेदों में सब से अधिक परमेश्वर का वर्णन माना जाता है और कहा जाता है कि—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।

समस्त वेद ओंपदवाच्य परमात्मा का वर्णन करते हैं। इन्द्र और परमेश्वर का एक अर्थ है। इन्द्र शब्द इदि परमैश्वर्ये धातु से बना है। इस से यदि अधिक वर्णन के कारण ऋग्वेद का कोई देवताविशेष कहा जाता तो इन्द्र देवता कहना चाहिये था, न कि सोम। अन्यथा सब वेदों में सब देवतों का वर्णन है, किसी एक का नहीं। इस लिये चरणव्यूह के इस अशुद्ध पाठ का फल भी वह नहीं हो सक्ता जो उस ने लिखा है। तथा इस चरणव्यूह का भारत के पश्चात् बनना भी स्पष्ट है, जब कि इस में प्रक्षिप्तसहित १ लक्ष भारत का वर्णन है। चारों वेदों का १ लक्ष बताना भी विरुद्ध है। क्यों कि मूल चार संहिताओं में २४००० के अनुमान मन्त्र हैं १ लक्ष नहीं। और आप के मतानुसार समस्त शाखासमुदाय को वेद माने तो १ लक्ष से अधिक होने के कारण १ लक्ष बताना अयुक्त है। इत्यादि अनेक हेतुओं से उक्त चरणव्यूह का लेख ठीक नहीं ॥

इति श्री मूर्तिप्रकाशसमीक्षायां वेदशाखादिविभागनिरूपणे तृतीयं प्रकरणम् ॥ ३ ॥

अब पृष्ठ १७ पं० १८ से लिखते हैं कि—अथ पुराण प्रमाणनिर्णयं आधुनिकानि इदानींतनब्राह्मणादिकृतानीति यदुक्तं तत्खण्डनम्। यजुर्वेदीयब्राह्मणे गन्धर्वाप्सरसश्च ये सर्वास्ता इतिहासपुराणं च सर्वदेवजनाश्च सर्वास्ता ये च लोकाः ये चालोका अंतर्भूतं प्रतिष्ठित इत्युक्तम्। छांदोग्ये सप्तमप्रपाठके सनत्कुमारं प्रति नारदवाक्यम्—सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमार्थवणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं देवं निधिं वाकोवाक्यमित्यादि०॥

बृहदारण्यकोपनिषदि-एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यद्ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोक इत्यादि०॥

पुनस्तत्रैव याज्ञवल्क्यजनकसंवादे—वागेकायतनमाकाशः प्रतिष्ठाप्रज्ञेते तदुपासीत का प्रज्ञाता याज्ञवल्क्यवागेव सम्राड् इति होवाच वाचा वै सम्राड् बन्धुः प्रज्ञायेत ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराणं विद्या उपनिषदःइत्यादि०॥ मनुस्मृतौ ३।२३२ स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि। आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च॥

भाव यह है कि उक्त प्रमाणों में पुराण पद आया है जिस से पुराण प्राचीन ज्ञात होते हैं॥

उत्तर—प्रथम तौ जब तक पुराणप्रतिपादित वेदविरुद्ध मिथ्याभाषणादि दोष निवृत्त न किये जावें तब तक पुराणों के प्राचीन सिद्ध करने से क्या होता है। क्योंकि प्राचीन तौ धर्म अधर्म पाप पुण्य आदि सभी कुछ है। किसी के प्राचीन होने मात्र से सत्यता वा प्रमाणता सिद्ध नहीं होती। द्वितीय, यदि वर्त्तमान १८ पुराण व्यासकृत ही मान लिये जावें तौ भी उन का वर्णन व्यास जी से पूर्व बने पुस्तकों में नहीं आ सकता। तृतीय, इन

आप के दिये यजुर्वेदीय ब्राह्मण, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और मनु के प्रमाणों में कहीं ब्रह्मवैवर्तादि किसी पुराणविशेष का नाम नहीं आया, संभव है कि ब्राह्मणादि ग्रन्थों में लिखे प्राचीन आख्यानों को वहां पुराण पद से ग्रहण किया हो। चतुर्थ, मनु के प्रमाण में पुराण शब्द इस लिये भी नहीं आना चाहिये था कि स्वायंभुव मनु से पूर्व कोई पुराण न था। अतः यह श्राद्धप्रकरण के समस्त श्लोकों के समान प्रक्षिप्त भी है। पञ्चम, लिङ्ग पुराण में लिखे नीचे के श्लोक से भी प्रमाणित होता है कि ये १८ पुराण किन्हीं अन्य पुराणों से संक्षेप करके बनाये गये हैं, अतः ऊपर के प्रमाणों में उन्हीं प्राचीन पुराणों का वर्णन होना संभव है। इन १८ का नहीं। जैसाकि—

चतुर्लक्षेण संक्षिप्ते कृष्णद्वैपायनेन तु ।।
अत्रैकादशसाहस्रैः कथितो लिङ्गसंभवः ।। लैङ्गे २ । ५ ।।

इसी प्रकार याज्ञवल्क्यस्मृति श्लोक १ । ३६ तथा १ । ४३ और हारीतस्मृति श्लोक ४ । ६४ कात्यायन स्मृति श्लोक २ । १४ व्यासस्मृति अध्याय १ । ३ । ४ में आये इतिहास पुराण शब्दों का तात्पर्य भी उन्हीं प्राचीन इतिहासों से लग सकता है, क्या आवश्यकता है कि इस नवीन पुराणों का ग्रहण किया जाय। दूसरी बात यह है कि ये याज्ञवल्क्यादि स्मृतियें भी तो वादी ने नहीं मानी हैं। जिस प्रकार इतिहास पुराण साध्य हैं और उन की सिद्धि अन्य प्रमाणों से करते हो इसी प्रकार मनु को छोड़ कर अन्य स्मृतियों को भी वादी नहीं मानता इस लिये वे भी सब साध्य हैं। सिद्ध नहीं। तब—

स्वयमसिद्धः कथं परान् साधयेत् ।

जो स्वयं असिद्ध है वह अन्यों की सिद्धि कैसे करे। इस लिये पुराणों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रमाण देने चाहियें। न कि स्वयं साध्यों के।

एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि जितने प्रमाण आपने दिये हैं उन में केवल इतिहास पुराण शब्द आये हैं, जिन से उस २ ग्रन्थ के समय में किन्हीं इतिहास पुराणों का होना मात्र पाया जाता है। किन्तु आप को ऐसे प्रमाण देने चाहिये थे जिन में यह लिखा होता कि इतिहास पुराण पदवाच्य भागवतादि पुराण प्रामाणिक हैं और इन में लिखा विधि

निषेधादि धर्मविषय में माननीय है । सो तो आप के दिये प्रमाणों में से एक में भी नहीं आया । फिर आप की प्रतिज्ञा "पुराणप्रमाणनिर्णय" कहां सिद्ध हुई । किन्तु यह तो ऐसा ही है जैसा कि एक आप्त पुरुष कहे कि कुरान और बाइबल मुसलमानों और ईसाईयों के पुस्तक हैं । इस से उन का होना मात्र सिद्ध होगा न कि यह कि आर्यों को उन में लिखा धर्म प्रमाण करना चाहिये । इसी प्रकार आप के प्रमाणों से भी इतिहास पुराण की सत्ता(होना=वजूद) मात्र सिद्ध है न कि प्रामाणिकता । और किन्हीं इतिहास पुराणों की सत्ता सिद्ध है न कि व्यासकृत नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ पुराणों की । आप के संस्कृत में जो अशुद्धि थीं वे ज्यों की त्यों हमने छापी हैं ।।

पृष्ठ २० पं० ४ में—

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं भवेत् ।

भारत स्वर्गारोहण पर्व अध्याय ६ के प्रमाण से १८ पुराणों का होना और १८ पुराणों के श्रवण का फल भारत के श्रवण से होना सिद्ध किया है ।

उत्तर—भारत में १८ पुराणों का वर्णन आना पुराणों के विरुद्ध होने से भी माननीय नहीं । क्योंकि भागवत के लेख से विदित होता है कि जब व्यास जी भारत के बनाने से भी सन्तुष्ट न हुए, तब १८ वां भागवत बनाया जैसा कि—

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा । कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ।इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिनाकृतम् ॥२५॥ एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः । सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्धृदयं ततः ॥२६॥ इत्यादि । श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे ४ अध्याये ॥

भाव यह है कि व्यास जी ने स्त्री शूद्र द्विजबन्धुओं को वेदत्रयी सुनने को न मिलने से वे कल्याण कर्म के जानने में मूढ रहते हैं, उन के कल्याणार्थ कृपा करके भारत बनाया । इसी प्रकार प्राणियों के कल्याण में प्रवृत्त रहने पर भी हृदय में सन्तोष न हुवा तब नारद जी के कहने से भागवत बनाया । और भागवत १७ पुराणों से आगे १८ वां है । जैसा कि श्रीमद्भागवत

(गताङ्क पृ० १८० से आगे मूर्त्तिप्रकाशसमीक्षा)

माहात्म्य पद्मपुराण में लिखा है कि १७ पुराण भागवत सुनने आये—

दशसप्त पुराणानि षट्शास्त्राणि समाययुः ।

इस से श्रीमद्भागवत को १८ वां जताया है। और पद्मपुराण में यह भी लिखा है कि १७ पुराण और भारत बनाने से व्यास जी को प्रसन्नता न हुई तब १८ वां भागवत बनाया—

दशसप्त पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
नाप्तवान्मनसा तोषं भारतेनापि भामिनि ! ॥
चकार संहितामेतां श्रीमद्भागवतीं पराम् (पाद्मे)

और देवीयामलतन्त्र में लिखा है कि—

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं वेदसम्मतम् ।
परीक्षितायोपदिष्टं सत्यवत्यङ्गजन्मना ॥

अर्थात् श्रीमद्भागवत शुकदेव जी ने परीक्षित को सुनाया । यदि यह १८ वां पुराण है और भारत तथा १७ पुराणों से प्रसन्नता न होने पर व्यास जी ने बनाया है, तो भारत में १८ पुराणों का वर्णन स्पष्ट प्रक्षिप्त हुवा । और मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि व्यास के मुख से भारत सुन कर क्रौष्टुकी मार्कण्डेय के पास आया और भारत में जो उसे सन्देह हुवे थे, वे पूंछे । तब मार्कण्डेय ने मार्कण्डेय पुराण बनाया । इस से पाया जाता है कि मार्कण्डेय पुराण भी भारत से पीछे बना, तब भारत में १६ पुराण कहे जा सकते थे, भागवत और मार्कण्डेय को मिला कर १८ होते हैं और ये दोनों उक्त प्रमाणों से पीछे बनने सिद्ध हैं, अतः आप का भारत के प्रमाण से १८ पुराणों की सत्ता सिद्ध करना असिद्ध और अयुक्त है ।। इसी प्रकार भारत अनुशासन पर्व अ० ९० और विराट् पर्व अ० ५१ तथा आदि पर्व के उपक्रमणिकाध्याय में आये इतिहास पुराणों का उत्तर जानिये ॥

इति मूर्त्तिप्रकाशसमीक्षायां पुराणाऽप्रामाण्यनिरूपणं नाम चतुर्थं प्रकरणम् ॥ ४ ॥

अथाऽवतारसत्तासमीक्षा

पृ० २१ के आरम्भ में ही—नमो हृस्वाय च० इत्यादि यजुर्वेद १६ । ३०

का प्रमाण दिया है, परन्तु अर्थ नहीं किया है। इस दशा में यद्यपि उत्तर देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उन्हों ने अवतारसाधक कोई अर्थ ही नहीं लिखा, परन्तु पाठकों को इस का अर्थ ज्ञात करना हो तो श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कृत यजुर्वेदभाष्य में देखलें अथवा हमारे लघु पुस्तक "नमस्ते" में अथवा वेदप्रकाश भाग २ अङ्क ४ पृ० ३३ में देखलें। पुनर्वार लिखना पिष्टपेषण है॥

पृ० २१ पं० ४ में इदं विष्णुर्विचक्रमे० इत्यादि यजुर्वेद ५। १५ से अवतार सिद्ध करते हुवे लिखा है कि–

विष्णुर्वामनाऽवतारं कृत्वा इदं विश्वं विचक्रमे विभज्य क्रमते स्म तदेवाह त्रेधा पदं निदधे एकपदं भूमौ द्वितीयमन्तरिक्षे तृतीयं दिवि इति क्रमात् अग्निवायुसूर्यरूपेण इत्यर्थः॥

इस का भाषार्थ यह हुवा–विष्णु ने "वामनाऽवतार धारण करके" इस विश्व को विक्रान्त किया=विभागपूर्वक क्रमण किया। वही कहते हैं–तीन प्रकार पद रक्खा, एक पद भूमि में, दूसरा अन्तरिक्ष में, तीसरा द्युलोक में अर्थात् क्रम से अग्निरूप से भूमि में, वायुरूप से अन्तरिक्ष में, सूर्यरूप से द्युलोक में॥

उत्तर–प्रथम तो "वामनाऽवतार धारण करके" यह किसी मूल के पद का अर्थ नहीं किन्तु मनघड़न्त है। दूसरे अग्नि वायु सूर्य का वर्णन भी मूलमन्त्र में नहीं है। तीसरे यदि अग्नि वायु सूर्य रूप से विष्णु ने जगत् को विक्रान्त किया तो वामनरूप से तीनों लोक का विक्रान्त करना आपके ही लेख से कट गया॥ जो लोग इस मन्त्र का भी विस्तारपूर्वक अर्थ देखना चाहें वे श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कृत यजुर्वेदभाष्य में वा हमारे किये सामवेदभाष्य में पृ० ३३७। ३३८। ३३९ में विस्तारपूर्वक निरुक्तादि प्रमाणयुक्त देखें, अथवा हमारे रचे भास्करप्रकाश पृ० १९० में या वेदप्रकाश वर्ष ३ मास ९ पृष्ठ १६८ में भी छपा है, वहीं देख लीजिये॥

पृ० २१ पं० १४ में–विष्णवे निभूयपाय स्वाहा। यजुः २२। २० इस मन्त्र का यह अर्थ किया है कि (विष्णवे) व्यापक (निभूयपाय) नितरां पृथिवी में मत्स्य कृष्ण राम आदि अवतार धारण करके रक्षा करने वाले के लिये स्वाहा॥

उत्तर–आप के अर्थ में "पृथिवी में मत्स्य कृष्ण राम आदि अवतार धारण करके" इतना पाठ मनघड़न्त है। मूल के किसी पद से यह गन्ध भी

नहीं आता। आप ने महीधर की देखादेखी खेंचातानी की है, जो निर्मूल है। अक्षरों से यह अर्थ निकलता है–(नि) नितरां (भूय) होकर (पाय) रक्षा करने वाले के लिये=निभूयपाय। सो परमात्मा निरन्तर है और रक्षा करता है। रामकृष्णादि अवतार निरन्तर नहीं रहते, किन्तु किसी काल में होते हैं, किसी काल में नहीं होते, किसी देश में होते हैं, किसी देश में नहीं। इस लिये इन को नितरां कहना भी नहीं बनता॥

पृ० २२ पं० १ में–

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः। यजुः १६।२५॥

इस का अर्थ यह किया है कि "गृत्स=विषयलम्पट वा बुद्धिमानों के लिये नमस्कार और उन के पालकों के लिये नमस्कार। विकृतरूप वाले नग्न मुण्ड जटिलादि के लिये नमस्कार। विश्वरूप=नानारूप तुरङ्गवदन हयग्रीव वराह आदि के लिये नमस्कार। इस से हयग्रीव वराहादि अवतारों का होना स्पष्ट ही जाना जाता है। पूर्वार्ध का अर्थ स्पष्ट होने से नहीं लिखा"॥

उत्तर–१–मूल में तुरङ्गवदन हयग्रीव वराह आदि कोई शब्द नहीं, यह महीधर की निजकल्पनामात्र है। २–विषयलम्पट कौन से अवतार हैं? और अवतारधारी परमात्मा है तो उस के पालक कौन हैं? यदि कृष्ण को विषयलम्पट मानो तो बहुवचन किस लिये हैं? क्या कृष्ण अनेक हैं? ३–नग्न मुण्ड जटिलादि अवतार कौन से हैं? यदि कोई नहीं तो अवतारप्रकरण नहीं है? ४–पूर्वार्ध का अर्थ स्पष्ट है तो क्या आपने उस में गण, गणपति, व्रात, और व्रातपति शब्दों से भी कोई अवतार समझे हैं? यदि समझे हैं तो कौन? और २४ वा १० अवतारों में हैं वा नहीं? हैं तो कौन? नहीं तो क्यों? ५–गण, गणपति आदि शब्द बहुवचनान्त क्यों हैं? आप का अभिमत गणेश एक है वा बहुत? यदि एक है तो यहां बहुवचन से उस एक का बोध कैसे होगा? यदि गणपति परमात्मा के अवतार हैं तो अन्य अवतारों के समान पुराणों में इन की गणना क्यों नहीं? अब सत्यार्थ सुनिये–

इस मन्त्र के (रुद्राः देवताः) रुद्र देवता हैं, यही महीधर भी मानता

है । रुद्र शब्द से यदि ईश्वर का ग्रहण होता तो " रुद्रो देवता " ऐसा एक वचन होता । जैसा कि इसी अध्याय के १–१६ ऋचाओं के देवता महीधर ने भी १६ । १ के भाष्य में बतलाया है कि "षोडशर्चोनुवाक एकरुद्रदैवत्यः" परन्तु इस पच्चीसवें के लिये १६ । १७ के भाष्य में कहा है कि १७ से ४६ वीं कण्डिका के "धनुष्कृद्भ्यः" पद पर्यन्तों के (रुद्राः देवताः) बहुवचनान्त प्रयुक्त बहुत रुद्र देवता हैं । इस से जाना जाता है कि यहां रुद्रपदवाच्य एक परमेश्वर का वर्णन भी नहीं है । शतपथ ब्राह्मण में भी इस विषय में अवतारचर्चा नहीं है। वास्तव में यहां रुद्र शब्द बहुवचनान्त का अर्थ शतपथ काण्ड १४ प्रपाठक १६ कण्डिका ५–

कतमे रुद्रा इति । दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः ।

के अनुसार १० प्राण और ११ वें आत्मा से मिल कर बने अनेक प्राणियों का वर्णन है । परमात्मा का नहीं। तब यह अर्थ होगा कि–गणा=सेवकों, गणपति=सेवकों के रक्षकों, व्रात=साधारण मनुष्यों(देखो निघण्टु२।३)व्रातपति=मनुष्यों के रक्षकों, गृत्स=मेधावी=बुद्धिमानों और उन के रक्षकों (देखो निघण्टु ३ । १५) विरूप=विविध रूप वालों और विश्वरूप=समस्त रूप वालों के लिये नमः अर्थात् अन्न सत्कार वा वज्र इत्यादि यथायोग्य हो (देखो निघण्टु २ । ७, २० में नमः शब्दार्थ) ॥

बस इस में सब मनुष्यों वा प्राणियों का सत्कार और यथायोग्य व्यवहार वर्णित है, न कि ईश्वर के अवतार ॥

पृष्ठ २२पं० १२ में–उत्सादेभ्यःकुब्जंप्रमुदे वामनम्। यजुः ३०।१०

में वामन शब्दमात्र आने से वामनावतार सिद्ध करते हैं ।

उत्तर–भला जी 'वामन' तो अवतार हुवा, और 'कुब्ज' भी कोई अवतार है ? आप 'कुब्जम्' के लिये क्यों चुप साधगये ? और मन्त्र का अर्थ क्यों नहीं किया ? आपने जो अर्थ न किया उस का कारण यह है कि आप जानते थे कि महीधर इस का अत्यन्त घृणित और हमारे विरुद्ध अर्थ करता है । महीधर ने यजु० ३०। ५ में कहा है कि–यहां से आगे अध्याय की समाप्ति तक पुरुषमेध यज्ञसम्बन्धी पशु गिनाते हैं । "ब्रह्मणे ब्राह्मणम्" (३० । ५) से लेकर "प्रकामोद्यायोपसदम् ३० । ९ " तक ब्रह्मा के लिये ब्राह्मण पशु इत्यादि ४८ देवतों को ४८ पशुओं का भेट चढ़ाना लिखा है । फिर दूसरे यूप(यज्ञस्तम्भ)

में "वर्णायानुरुधम्" ३० । ९ से लेकर "उपशिक्षाय अभिप्रश्निनम्" ३० । १० तक ११ पशु ११ देवतों को भेंट चढ़ाने के लिये नियुक्त करने=बांधने लिखे हैं । इन्हीं ११ पशुओं में तीसरा कुब्ज और चौथा वामन=ह्रस्वाङ्ग पुरुष पशु महीधर ने लिखा है । अब क्या वामनाऽवतार का महीधरभाष्यानुसार पुरुषमेध यज्ञ में उपयोग करना मानियेगा ? शोक है महीधर पर, कि जिस ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तस्कर नपुंसक मागध कुमारीपुत्र रथकार (बढ़ई) कुम्भार लुहार रत्नकार किसान तीरगर वाण बटने वाले आदि ४८ पुरुष पशुओं को पुरुषमेध के अग्निष्ठ यूप में बांधना, आलम्भन, प्रोक्षण, पर्यग्नि-करण, त्याग=भेंट चढ़ाना माना है, तथा बौने कुबड़े आदि ११ पुरुष पशुओं को दूसरे यूप में नियुक्त करके और तीसरे यूप में हाथीवान् आदि ११ पुरुष पशुओं को और चौथे यूप में लकड़िहारे आदि ११ को और पांचवें में पिशुन (चुगल) आदि ११ को तथा छठे यूप में योगकर्त्ता आदि ११ को और सा-तवें खम्भे में अप्रसूता आदि ११ को और आठवें में मार्गारादि ११ को पुनः ९ वें यूप में अहृष्टादि ११ को तथा १० वें यूप में सभास्थ आदि ११ को और ११ वें यूप में वीणा बजाने वाले आदि११ पुरुष पशुओं को; इत्यादि प्रकार यूपों में १८४ पुरुष पशु और स्त्री पशुओं की गति कराई है !

विदित हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने इस अध्याय में कहे ब्राह्मणादि को यज्ञपशु नहीं बताया किन्तु राजा की ओर से ब्राह्मणादि को अपने २ गुणकर्मस्वभावानुसार यथायोग्य कामों में नियुक्त करना वा संगत करना और व्यवस्थित होना लिखा है । वही सब को माननीय है ॥

पृष्ठ २२ पं० १५ में—

एषो ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतो-मुखः ॥ ३२ । ४ यजुः ॥

इस का अर्थ यह किया है कि प्रसिद्ध यही देव सब प्रदिशाओं में व्याप कर स्थित है । हे मनुष्यो ! यह प्रथम उत्पन्न है । प्रसिद्ध वही गर्भ में भी रहता है । वही उत्पन्न हो चुका, वही उत्पन्न होगा । वह प्रत्येक पदार्थ में व्यापक और सर्वतोमुख है अर्थात् उस के सब अवयव सर्वत्र हैं, अचिन्त्य शक्ति ही उस का मुख है ॥

उत्तर–यदि हम ऊपर के लिखे अर्थ को भी मानलें तौ भी अवतार का इस से क्या सिद्ध होता है?कुछ भी नहीं।जब वह सब दिशाओं में है, सर्वव्यापक है,सर्वतोमुख है,अचिन्त्य शक्ति ही उस का मुख है,तौ फिर अवतारवाद और साकारवाद कहां रहे ? यदि आप गर्भ में वर्त्तमान लिखने से अवतार समझे हों सेा ठीक नहीं, क्योंकि मन्त्र में किसी स्त्री के गर्भ का वर्णन नहीं, इस लिये संसार भर के गर्भ में अर्थात् भीतर छिपा होने से निराकारता ही पाई जाती है।यदि आप उत्पन्न हुवा वा उत्पन्न होगा कहने से जन्म समझते हैं सेा भी ठीक नहीं, उत्पत्ति का अर्थ यहां प्रादुर्भावमात्र है। प्रकरण से जब अचिन्त्य शक्तिरूपमुख प्रतीत है तब प्रादुर्भाव (प्रकट होने) का अर्थ भी अचिन्त्य शक्ति का ही प्रादुर्भाव है, नकि स्थूल देह धारण करना। मन्त्र का ठीक अर्थ यह है:—

योगद्वारा परमात्मा को साक्षात् करके जीवन्मुक्त कहता है कि-(एषः) यह (ह) ही (देवः) देव है (पूर्वः ह जातः) जो प्रथम ही से प्रकट है (सः) वह (उ) ही (गर्भे) अदृश्यमानस्थान में (अन्तः) भीतर व्यापक है (सः) वह (एव) ही (जातः) भूतकाल में था (सः) वही (भविष्यमाणः) भविष्यत् में होगा (सर्वतोमुखः) वह सब ओर देखता है (जनाः) हे मनुष्यो ! (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशाओं में (अनु) व्याप कर (प्रत्यङ्) छिपा हुवा अप्रत्यक्ष (तिष्ठति) स्थित है ॥

अर्थात् जब योगी कृतकार्य होकर परमात्मा का साक्षात्कार करता है तौ आश्चर्य से कहता है कि अहा ! यही देव है जो सब दिशा विदिशाओं में वर्त्तमान है। यही है जो मेरे जानने के पूर्व भी था। यही है जो भूत-भविष्यत् दोनों कालों में एकरस है। यही है जो सब के भीतर अन्तर्यामी होकर छिपा हुवा है। (प्रत्यङ्) इन्द्रियों से नहीं जाना जा सक्ता ॥

यदि आप को अब भी साकारता वा अवतार सूझता हो तौ इस मन्त्र से पहला मन्त्र–

न तस्य प्रतिमा अस्ति०इत्यादि यजुः ३२ । ३

देखिये। इस से अगला मन्त्र–

यस्माज्जातं न पुरा किञ्चनैव० यजुः ३२ । ५

भी यही जतलाता है कि परमात्मा से पूर्व कोई उत्पन्न नहीं हुवा,वही

सब का आदि है। और सब भुवनों में व्यापक है। विस्तार का भय है, नहीं तो हम मन्त्र १ से १३ तक अध्याय ३२ के सब मन्त्रों का अर्थ लिखते तो सब भेद खुलजाते ॥

पृ० २३ पं० ३ में–लिखा है कि–

तैत्तिरीयोपनिषदि पञ्चमाऽध्याये नृसिंहाऽवतारः स्पष्ट एव लिखितः—" वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात्"

उत्तर–यह नृसिंहगायत्री तो ख़ूब बनाई है। ज्ञात हो कि यह पाठ किसी नवीन ग्रन्थ में चाहे हो परन्तु तैत्तिरीयोपनिषद् में नहीं है। तैत्ति० में तो ५ अध्याय भी नहीं हैं, केवल १ शिक्षाध्याय २ ब्रह्मानन्दवल्ली ३ भृगुवल्ली, बस ४ वा ५ वां कोई अध्याय नहीं है। इस लिये यह प्रमाणाभास कोई प्रमाण नहीं है ॥

इति मूर्त्तिप्रकाशसमीक्षायामऽवतारसमीक्षणं नाम पञ्चमं प्रकरणम् ॥५॥

पृ० २३ पं० ८ में यह प्रतिज्ञा है कि अब मूर्त्तिपूजा में वेदवाक्य भी दीखते हैं " इस के आगे वेदवाक्य न लिख कर षड्विंशब्राह्मण का वही काशी-शास्त्रार्थ वाला प्रसिद्ध वचन–देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति० इत्यादि लिखा है ॥

उत्तर–इस का उत्तर सविस्तर हमारे बनाये " भास्करप्रकाश" एकादश ११ समुल्लास उत्तरार्ध पृष्ठ ४३। ४४। ४५ में छपा है, तथा वेदप्रकाश वर्ष ३ मास ३। ४ पृष्ठ ६३—६५ में भी छपा है, वहीं देख लेना चाहिये ॥

पृ० २४ में–अथर्वशीर्षोपनिषद् और गोपालतापनी उपनिषद् के वाक्य लिखे हैं। उन में यथार्थ में मूर्त्तिपूजा का प्रमाण है। परन्तु यूं तो आप ने इतना परिश्रम पूर्व वेदादि के प्रमाण का क्यों किया और अर्थ के अनर्थ क्यों किये और समझे, सूधा पुराणों से सैंकड़ों वचन ले कर मूर्त्तिपूजा सिद्ध कर दी होती। परन्तु पुराणों और गोपालतापनी उपनिषदादि की एक ही दशा है। इन ग्रन्थों का आर्षग्रन्थों के सामने मान्य नहीं। इस लिये न इन के प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध मानी जा सकती है, न इन के उत्तर देने की

आवश्यकता है। ग्रन्थों की प्रामाणिकता अप्रामाणिकता पर अद्यावधि आर्यसमाज की ओर से अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं, जिन में ऐसे २ घड़न्त उपनिषदों की पोल खुल चुकी है। इसी प्रकार का एक "कलिसंतारणोपनिषद्" सन् १८९६ में वेङ्कटेश्वर प्रेस ने नवीन प्रकाशित कर दिया, जिस का नाम तक भी कहीं अब तक उपनिषदों में प्रविष्ट न था। यही दशा पृष्ठ २५ में लिखे मैत्रायणी के वाक्य की जानो ॥

पृ० २५ पं० ४ में—यत्र गङ्गा च यमुना च० इत्यादि वाक्य को ऋग्वेद के अष्टमाऽष्टक का बतलाया है परन्तु यह ऋग्वेद का मन्त्र नहीं है, किन्तु ऋग्वेद के परिशिष्ट पृष्ठ २४ में आया है और इस का सविस्तर उत्तर हम पं० गोकुलप्रसाद और पं० शङ्करलाल सोती जी के प्रसिद्ध मुकद्दमे "गङ्गादि तीर्थ" में मध्यस्थ (पञ्च) होकर दे चुके हैं, जो वेदप्रकाश वर्ष ३ मास १ पृष्ठ ८ में छप चुका है ॥

फिर ऋग्वेद के उत्क्रमण, अथर्वण रहस्य, श्री रामपूर्वतापनीयोपनिषद्, बिल्वोपनिषद् आदि आधुनिक ग्रन्थों के प्रमाण पृष्ठ २५ में दिये हैं, जिन में रामचन्द्र संवादादि पौराणिक शैली के श्लोक हैं, जिन का उत्तर देना कुछ आवश्यक नहीं। जब कि वे ग्रन्थ मान्यकोटि में ही नहीं हैं ॥

इसी प्रकार पृ० २६ के बौधायन सूत्र, आश्वलायनगृह्य परिशिष्ट की दशा जानिये ॥

पृ० २७ में लिखा है कि शिष्टाऽऽचार भी मूर्तिपूजा में प्रमाण है। परन्तु जिन को शिष्ट मान कर आप शिष्टाचार से मूर्तिपूजा सिद्ध करते हैं, प्रथम यह तो सिद्ध करदें कि वे शिष्ट हैं। अन्यथा आप का लेख साध्यसम हेत्वाभास होने से निग्रहस्थान है। जिस प्रकार मूर्तिपूजा साध्य है, उसी प्रकार मूर्त्तिपूजकों की शिष्टता साध्य है, तब शिष्टाचार में मूर्तिपूजकों का आचार परिगणित करना स्पष्ट साध्यसम हेत्वाभास है, जो न्यायदर्शन के सूत्र—

साध्याऽविशिष्टः साध्यत्वात्साध्यसमः ॥ १ । ४९ ॥

से साध्यसम होकर—

हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः ॥ ५ । २ । २५

इस सूत्र से निग्रहस्थान है ॥

गुरु ... दण्डी ... पुस्तकालय

पृ० २८ में यजुर्वेद १५ । ५४ के मन्त्रस्थ "इष्टापूर्त्ते" पद का अर्थ प्रथम तो यह किया गया है कि "श्रौतस्मार्त्ते कर्मणी" अर्थात् इष्ट=श्रौतकर्म अग्निष्टोमादि और पूर्त्त=स्मार्त्तकर्म गर्भाधानादि संस्कार । आगे चल कर पृ० २९ में अत्रिस्मृति के प्रमाण से पूर्त्त शब्द का अर्थ–"वापीकूपतडागानि देवतामन्दिराणि च" लिख कर यह दिखलाया है कि वेद में इष्टापूर्त्ते पद आया । और पूर्त्त का अर्थ इस प्रकार देवतामन्दिर भी है, तो इस से मूर्त्तिपूजा सिद्ध हुई।।

प्रथम तो आप ने स्वयं पूर्त्त शब्द का अर्थ देवतामन्दिर नहीं किया किन्तु स्मार्त्तकर्म अर्थ किया है । और यही अर्थ महीधर ने किया है, आप का अत्रिस्मृति वाला अर्थ नहीं किया । दूसरे यौगिकार्थ वेद में प्रबल होने से लाक्षणिकार्थ लेना अयुक्त है । यौगिकार्थ यह है कि इष्ट=यजतिकर्म और पूर्त्त=पूरणकर्म जैसे कूपादि जलाशय बनवाना, भरवाना । बस इस से अधिक अर्थ नहीं लेना चाहिये । तीसरे यदि आप के अत्रिस्मृति के वाक्य को भी मान लें तो मनु के (होमो दैवो बलिर्भौतः) कथनानुसार होम का नाम देवपूजा होने से देवतामन्दिर का अर्थ भी होमशाला वा यज्ञशाला होगा । तब भी हमारे पक्ष की हानि नहीं ।।

पृ० २९ में यजुः २ । १८ मन्त्र में जो "प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः" वाक्य आया है, उस में से "प्रस्तरे" का अर्थ पाषाण करके पाषाणमूर्त्ति समझी है ।।

आप ने समस्त अर्थ तो अक्षरशः महीधर से लिया, परन्तु प्रस्तरे का अर्थ पाषाण महीधर ने नहीं लिखा, तब आप उस से भी आगे बढ़ गये और आप ने पाषाण अर्थ ले लिया । यद्यपि अमरकोष में प्रस्तर नाम पाषाण का भी है, परन्तु प्रकरण देखना चाहिये कि यज्ञ में आये मन्त्र और जिस मन्त्र के अन्त में साक्षात् "स्वाहावाट्" शब्द आया है और जिस का महीधरभाष्यानुसार भी " विश्वेदेवा देवताः " हैं, न कि अवतारविशेष की मूर्त्तिविशेष, और साथ ही जहां "परिधेयाश्च देवाः" भी आया है, जिस का अर्थ परिधि के देवता है और परिधि यज्ञ में प्रसिद्ध है जो कि यज्ञवेदि वा कुण्ड की परिधि उस के चारों ओर होती है, तब भला पाषाणमूर्त्ति का वहां क्या प्रयोजन ? दूसरे यदि ऐसा ही होता तो क्या मूर्त्तिपूजा का पक्षपाती महीधर "प्रस्तरे" का अर्थ पाषाण न करता ? कृपा करके पाठकवर्ग, अमरकोष तृतीय काण्ड नानार्थ वर्ग श्लोक १६१ को देखें । जिस में लिखा है कि–

संस्तरो प्रस्तराऽध्वरौ

अर्थात्–प्रस्तर और अध्वर का अर्थ संस्तर=बिछौना है, जो कुशा से

यज्ञ में बनाया जाता है। इस की महेश्वरकृत अमरविवेक नाम टीका में भी यही लिखा है कि-

प्रस्तरो दर्भमुष्टिर्दर्भशय्या वा।

प्रस्तर कुशमुष्टि वा कुशशय्या=बिछौने को कहते हैं। जो यज्ञ के प्रकरण में हो। यहां यज्ञ का प्रकरण होने से कुशाओं पर बैठे विश्वेदेवों= विद्वानों का ग्रहण है।।

पृ० ३० में--नमः सिकत्याय च०। इत्यादि यजुः १६। ४३ से ईश्वरकी मूर्त्ति पूजना सिद्ध किया है। परन्तु जानना चाहिये कि इस मन्त्र के भी बहुवचनान्त रुद्रदेवता हैं। अतः इस का उत्तर भी पृ० १८७ में पूर्व लिखे अनुसार मनुष्यपरक अर्थ होने से तत्तुल्य ही है। जिन को पूर्ण अर्थ देखना हो, स्वामी दयानन्द सरस्वतीकृत यजुर्वेद भाष्य में देख लें।।

पृ० ३१ में—न तस्य प्रतिमा अस्ति० इत्यादि यजुः ३२। ३ को पूर्व पक्ष में दिखा कर फिर प्रतिमानिषेध का तात्पर्य सादृश्यनिषेध बताया है और लिखा है कि इस से मूर्त्ति का निषेध नहीं आता।।

मूर्त्ति और प्रतिमा एकार्थ हैं। यदि मूर्त्ति का अर्थ सादृश्य नहीं तो रामचन्द्र की मूर्त्ति धनुष् बाणादि चिह्न युक्त रामचन्द्र के सदृश और कृष्णचन्द्र की मूर्त्ति मुरली मुकुटादि चिह्नयुक्त कृष्ण के सदृश क्यों बनाई जाती हैं। आप के मुकरने से कुछ नहीं होता। सादृश्याऽभाव प्रतिमाऽभाव और मूर्त्ति न होने का तात्पर्य एक ही है। इस लिये आप के अर्थ से भी मूर्त्ति का निषेध स्पष्ट आता है।।

पृ० ३१ में आगे यजुः १६। १७ के-नमो हिरण्यबाहवे० इत्यादि को ईश्वर का विशेषण बता कर साकारता दिखाई है। परन्तु इस का अर्थ भी उसी प्रकरण में होने से पृ० १८७के अनुसार जीवपरक है, ईश्वरपरक नहीं। विस्तार के लिये स्वामी जी का भाष्य देखिये।।

आगे पृ० ३१ और ३२ में—अश्मा च मे मृत्तिका च मे० यजुः० १८। १३ से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने का साहस किया है। परन्तु उस का अर्थ ऐसा सरल निर्विकल्प है कि जिस में साधारण समझ वाले को भी संशय नहीं होता। यथा—पत्थर मिट्टी पर्वत बड़े पर्वत वा मेघ बालू वनस्पति सोना अयस् श्याम लोहा सीसा त्रपु इत्यादि पदार्थ मेरे परोपकार में लगें। बस क्या इस से कोई मनुष्य भी ऐसा भ्रम कर सकता है कि इन पदार्थों की मूर्त्तियें बनाई जावें? और आप स्वयं अन्त में लिखते हैं कि-

एते कार्यविशेषेषु मे कल्पन्ताम्।

जिस का अर्थ यह है कि ये पदार्थ कार्यविशेषों में मेरे काम आवें। क्या कार्यविशेष से मूर्त्ति बनाना अर्थ लेना आवश्यक है ? क्या कार्यविशेष से पत्थर आदि से मकान बनाने आदि कार्यविशेष का अर्थ लेना सरल सुगम और स्पष्ट नहीं है ?

इति मूर्त्तिप्रकाशसमीक्षायां मूर्त्तिस्थापननिराकरणं नाम षष्ठं प्रकरणम् ।। ६ ।।

पृ० ३२ में मनु २ । १७ और ४ । १३०, १५२, १५३, १६३, २५१ श्लोकों में आये देवपूजादि शब्दों से मूर्त्तिपूजा का भ्रम किया है ।।

२ । १७ में तो आप का श्लोक (नित्यं स्नात्वा०) है ही नहीं किन्तु २ । १७६ वां है, सो वहां और आगे के सब प्रमाणों में देवतापूजन वा देवतामन्दिर का तात्पर्य अग्निदूतद्वारा वायु आदि देवतों का यजन और इसी लिये यज्ञशालाओं का तात्पर्य है । २ । २५१ वें के प्रक्षिप्त मानने के हेतु हमारे मनुभाषानुवाद में देखिये तथा इन सब का अर्थ भी ।। यही उत्तर मनु में आये सर्वत्र देवता वा देवमन्दिरादि शब्दों का है ।। अध्याय ९ में २५ । २८ संख्या पर आप के लिखे श्लोक नहीं हैं । और उन (प्रतिमानां च भेदकः, और—देवतागारभेदकान्) का अर्थ भी यह है कि यज्ञशालाओं के ढाने वालों और प्रतिमाओं का तोड़ने वाला । किन्तु पूजनीय मूर्त्तियों का ज्ञापक वहां कोई शब्द नहीं है । यह पाठ यथार्थ में २८० और २८५ वें श्लोकों में है । आप का दिया पता अशुद्ध है ।।

इस से आगे छापने वाले की भूल से ३३ पृष्ठ के ऊपर ४६ । ४७ पृष्ठ छपे हैं और उन में सुरख़ रङ्ग बनाने आदि रंगसाज़ी के हुनर लिखे हैं, जो अनुमान किसी अन्य पुस्तक की इबारत आगई है । आगे यह पुस्तक हम को खण्डित मिला। इस कारण इस सप्तम प्रकरण की समाप्ति ज्ञात न हो सकी।

आगे खण्डित पृष्ठ ३६ । ३७ । ४०।४१ । ४२।४३ । ४४ मिलते हैं । बीच में ४२ । ४३ पृष्ठ डाल कर फिर स्याहियों के नोटिस आपड़े हैं ।।

ऊपर के पृष्ठों में याज्ञवल्क्यस्मृति, आङ्गिरसस्मृति, लिखितस्मृति, अत्रिस्मृति, हारीतस्मृति, कात्यायनस्मृति, शातातपस्मृति, महाभारत, हरिवंश, भारतानुशासन, रामायण, अग्निपुराण, सिद्धान्तशेखर, हयशीर्षागम, त्रिविक्रमाचार्य इत्यादि ग्रन्थों के आधुनिक प्रमाणों से अष्टम नवम प्रकरण भर कर ग्रन्थ समाप्त किया है और बीच में महाभारत में प्रक्षेप न होने का बल

लगाया है । परन्तु इन ग्रन्थों की नवीनता और प्रक्षिप्तयुक्तता अत्यन्त स्पष्ट हो चुकी है और यथार्थ में इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर मूर्त्तिपूजादि अवैदिक कर्म प्रचलित हैं । इस लिये इन ग्रन्थों का उत्तर देना आवश्यक नहीं । भारत और रामायण के प्रक्षेप युक्त होने के प्रमाण हमारे बनाये भास्करप्रकाश नामक प्रसिद्ध पुस्तक में भलेप्रकार विस्तारपूर्वक वर्णित हैं, जो वेदप्रकाश भी छप गये हैं, वहां देख लीजिये ।।

इति मूर्तिप्रकाशसमीक्षा समाप्ता ।।

ओ३म्

चारों (मूल) वेद

बहुत सस्ते !!!

जिस परम पिता ने हम प्राणियों के हितार्थ पृथ्वी से लेकर सूर्य पर्यन्त अनेक पदार्थ रचे हैं उस ही ने सृष्टि के आरम्भ में सब मनुष्यों के जीवन-सहायतार्थ ज्ञान का भी दान दिया जो कि वेदों के नाम से पुकारा जाता है । वेदों का महत्व शिखाधारी मात्र ही नहीं किन्तु पृथ्वी के अन्य बड़े २ विद्वानों के हृदय में भी अङ्कित हो गया है । एक समय था कि इन वेदों का दर्शन भी दुर्लभ था । यह चारों संहिता अर्थात् ऋग्, यजुः, साम और अथर्व सुन्दर टाइप में और सुन्दर काग़ज़ पर अब छप कर इस यन्त्रालय में उपस्थित हैं । और नीचे लिखे नाम मात्र दामों पर मिलती हैं:-

सर्व हिन्दू और आर्य सज्जनों को तो यह अपूर्व और सब से पुराना धर्मग्रन्थ होने से उन को तो मंगवा कर अवश्य अपने नेत्रों को सुफल और घर को पवित्र करना चाहिये ।

	मूल्य	डाकमहसूल
साधारण काग़ज़ पर विना जिल्द	५)	।।)
बढ़िया काग़ज़ पर „ „	५।।)	।।=)

साधारण जिल्द के दाम १)
बढ़िया जिल्द के दाम २)

☞ मिलने का पताः—तुलसीराम स्वामी
स्वामियन्त्रालय—मेरठ

अन्यों के बनाये पुस्तक ॥

।रम्भ बालकों को -) भागवतविचार -) शिक्षावली)॥पुराणपरीक्षा ≡) ाम का संक्षिप्त जीवनचरित्र -)। संगीतसुधाकर =) मातृभक्ति)॥ भक्त-र्जुन -) मतनिर्णय -) कन्यासुधार -) भूतनिर्णय -)॥ ईश्वरसिद्धि =)॥ यज्ञ =)॥ जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलय ≡) व्याहृति (भूर्भुवः स्वः) व्याख्या)॥। लगीता =) बालविवाह नाटक)॥। वायुमण्डल)। विवाहमर्याद- -) संगीतसुधासागर -) धर्मबलिदान (पं० लेखराम वियोग) आह्ला-न्द =) भागवतपरीक्षा)॥ संजीवनबूंटी बड़ी -)। कुरीतिनिवारण -)। सत्य (प्रसन्न नवलसिंह कृत ≡) बाइबिल की पोल -) वैश्योपनयनविधान)॥ भविष्यपुराणकी प्रेक्षा।)सुश्रुतमूल सजिल्द२)सांख्यप्रवचन भाष्य संस्कृत मेंही१।) ङ्कगणितार्यमा≡)॥ग़ाज़ीमियांकीपूजा)॥संस्कृत–भाषा–प्रथम श्रेणि (रीडर)-)

(नीचे के पुस्तकों पर कमीशन नहीं दिया जाता)

नारायणीशिक्षा दोनों भाग गृहस्थाश्रम १।) वैशेषिकदर्शन भाषानुवाद सहित १) दमयन्तीस्वयंवरनाटक ≡) महर्षिवियोग–शोक -) दशनियमशिख-रिणी)। वैशेषिकदर्शन प्रशस्तपादभाष्य संस्कृत में ॥) क्या स्वामीदयानन्द मक्कार था)॥। मनुष्यजन्म की सफलता)॥ पुराण किसने बनाये)। मनुष्य-समाज)॥ आर्य हिन्दू और नमस्ते का अन्वेषण)॥। स्वामी जी का पद्य में संक्षिप्त जीवनचरित्र)॥ रामदर्शनादि)। कृश्चनमतदर्पण)॥ अन्त्येष्टिकर्म)॥। ईसाईमतलीला)। ईसाईमतखण्डन १ भाग)। वेश्यालीला)॥ रामचन्द्र वेदान्ती का उत्तर)। सीताचरित्र १ भाग ।-) सीताचरित्र २ भाग ।-) भजन-पचीसी)॥ देवीभागवत परीक्षा)। पुरुषसूक्त)॥ विरजानन्द जी का जीवन-चरित्र)॥। सुशीलादेवी)। आर्यसमाज के नियमों का वेदमन्त्रों से सम्मेलन)॥ नीतिशिक्षावली)। आर्यो जागृत हो)॥। वीरेन्द्रवीर ।।=) जया ॥) शिवाजी का जीवनचरित्र ।) पं० गुरुदत्त का सादा चित्र -) स्वामी जी का -) रंगीन दोनों प्रत्येक -)॥ गायत्री)॥ पं० गुरुदत्त के माण्डूक्योपनिषद् का भाषानुवाद ।-) शिक्षाध्याय)॥। खेती की विद्या ।।=) जीवात्मा)॥ गृह्यचिकित्सा ।) वैदिकधर्मप्रचार ।॥) पौराणिकदर्पण)॥ वेदारम्भ)॥ स्वर्ग-प्राप्ति ≡) ब्रह्मशक्ति≡) वृद्धविवाहनाटक-) पाठकवैराग्यभजनमञ्जरी)॥ वर्णव्यवस्था =) गङ्गामाहात्म्यप्रमाण =)भारतगौरवादर्श ।)प्रायश्चित्तादर्श ।)

तुलसीराम स्वामी सम्पादक "वेदप्रकाश" तथा सामवेदभाष्यकार–मेरठ

मूल्य घटाये हुवे पुस्तक ।

सामवेदभाष्य का पूर्वार्ध समाप्त हो गया । कमीशन छोड़कर डा ४) मनुस्मृतिभाषानुवाद १।।) सजिल्द १।।।) सुनहरी छापा ५) श्वेत पनिषद्भाष्य दर्शनीय भाष्य है अबतक संस्कृत और भाषामें ऐसा भाष्य दूसरा बना है मूल्य ।-) दयानन्दतिमिरभास्कर का उत्तर "भास्करप्रकाश" १। २ समुल्लास ।=) ४ ।५। ६ समुल्लास ।।-) ७ ।८।९। १० समुल्लास ।।।≡) ११ वां समुल्लास ।।) संपूर्ण २।=) कमीशन छोड़कर २) दिवाकरप्रकाश ।) विदुरनीति भाषा टीका ।-) कपड़े की जिल्द ।≡) श्लोकयुक्त वैदिक निघण्टु ≡) वेदप्रकाश मासिक के प्रथम भाग १ वर्ष का ।।=) द्वितीयभाग ।।=) तृतीय भाग ।।=) तीनों भाग एक साथ नक़द १।।) मात्र । संस्कृत स्वयं सिखाने वाली संस्कृतभाषा प्रथम पुस्तक)।। द्वितीय पुस्तक -) तृतीय पुस्तक =)।। चतुर्थ ।=) चारों की कच्ची जिल्द ।।≡) पक्की जिल्द ।।।) ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दुपरागे द्वितीयोंऽश -)।। नियोगनिर्णय =) अज्ञाननिवारण (पादरीसाहब का उत्तर) मूल्य -)।। मुक्ति और पुनर्जन्म पर प्रसिद्ध व्याख्यान -)।।सत्यार्थप्रकाशसङ्ग्रह बालकों को पढ़ाने योग्य है ≡)शास्त्रार्थ किराणा -)वैदिकदेवपूजा प्रसिद्ध व्याख्यान -)ईश्वर और उसकी प्राप्ति-यह भी प्रसिद्ध व्याख्यान है -)चाणक्यनीतिसार भाषा टीका -)।प्रश्नोत्तररत्नमाला -) भजनेन्दु-नये खड़ताली भजनों सहित -) नालिकाविष्कार-जिस में प्राचीन तोप बन्दूक आदि के प्रमाण हैं)।।। आर्यसमाज के नियम नागरी ≡)। सैंकड़ा, अंग्रेज़ी में ।) सैंकड़ा । व्याख्यान का विज्ञापन जो चार जगह ख़ानापुरी कर के सब उपदेशकों के काम में आता है =) सैंकड़ा । भजन इकीसी)।। विवाह समय वर वधू के पठनीय मन्त्र अर्थसहित-इस में आर्यविवाहमङ्गलाष्टक और विवाह तथा हवन की सामग्री भी छपी है)।। पञ्चकन्याचरित्र नियोग विषय में)।। अक्षरप्रदीप वर्णमाला)। नमस्ते पर व्याख्यान)। रामायण का आल्हाछन्द दूसरा भाग)।। लावनी फट)। सन्ध्योपासन जो आर्यप्रतिनिधि सभा को भेंट किया ट्रैकृट है)। १०० का १।) ५०० का ५) पञ्चमहायज्ञ मलमात्र)। में दो, ।।=) के १०० और २।।) के ५०० तथा ४) के १००० इकट्ठे लेकर बांटने योग्य हैं। आर्यचर्पटपञ्जरिका प्रसिद्ध भजन)। के दो । ३ आरती)। के ३ पुस्तक ।=) के १०० सत्यबोध -) शास्त्रार्थरानीगंज)।। ऋषिचरित्र-) भजनपुष्पावली ।) टकेसेरमुक्ति)।।भोजनविवेक -)। सन्ध्योपासन-मीमांसा-) ईसाईमतपरीक्षा)।। नागरीरीडर नं० २ मूल्य -) पौराणिकधर्म और थियासौफ़ी)।।। हुक्कादोषदर्पण ।=) मूर्त्तिप्रकाशसमीक्षा =)

☞ सस्ता कमीशन-ऊपर मूल्य घटाने पर भी कमीशन और छोड़ा जायगा २॥) में ।।) और १०) में ३) छोड़े जायंगे । सर्वसाधारण को सामवेद उपनिषद्भाष्यादि पारमार्थिक और लौकिक सुधार के पुस्तक लेने का अच्छा अवसर है ।

पता-तुलसीराम स्वामी-मेरठ